□ प्रा० एस० एस०, फिसके एम० ए० (अर्धमागधी), एम० ए० (हिन्दी)
(प्रा० छत्रपति शिवाजी कालेज, सतारा, महाराष्ट्र)

प्राकृत तथा अर्धमागधी में अंतर और ऐक्य

□

प्राकृत भारत देश की पुरातन भाषा है। हर एक भाषा का अपना-अपना अलग-अलग स्थान व स्वरूप होता है। 'भाषा' शब्द की व्याख्या विविध प्रकार से की गई है—"मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि-संकेतों के व्यवहार को भाषा कहते हैं।" "विचार और आत्माभिव्यक्ति का साधन भाषा है"। भाषा-उत्पत्ति के प्रत्यक्ष और परोक्ष मार्ग होते हैं—जैसे अनुकरणमूलकता, विकास, असभ्य जातियों की भाषा आदि।

डा० ग्रियर्सन ने भाषा का विभाजन ऐतिहासिक और व्यावहारिक रूप में किया है। ऐतिहासिक भाषा वह है, जिसका छोटा भाग शब्द, उसकी व्युत्पत्ति हमें चेष्टा करने से प्राप्त हो सकती है। व्यावहारिक भाषा का रूप ऐतिहासिक भाषा से अलग है। विरुद्ध स्वरूप है। प्राकृत ऐतिहासिक भाषा है। ऐतिहासिक भाषा इण्डो-जर्मन, इण्डो-आर्यन नाम से भी ज्ञात है। ग्रियर्सन का विचार है कि भारत में प्रथम दो टोलियाँ आई थीं। पहली टोली पंजाब के पास रहने लगी। भौगोलिक परिस्थितियों से भाषा में परिवर्तन होने लगा। दूसरी टोली पंजाब के पास ही वास्तव्य के लिए आ गई। उसने अपनी भाषा समृद्ध बनायी, उस भाषा में साहित्य लिखा है। वही भाषा वैदिक भाषा के नाम से प्रसिद्ध हो गई। वैदिक भाषा के समय जो बोली भाषा थी उसे ही प्राकृत कहते हैं। पाणिनी ने वैदिक भाषा का व्याकरण बनाया और उसका संस्कृत नामाभिधान किया। वैदिक और प्राकृत भाषा समकालीन हैं।

प्राकृत भाषा की तीन विकासावस्थाएँ हैं। पहली अवस्था प्रथम टोली की बोली भाषा, दूसरी अवस्था साहित्यिक भाषा, तीसरी अवस्था अपभ्रंश तथा प्रादेशिक भाषा है। प्राकृत भाषा की उत्पत्ति के बारे में दो प्रवाह प्रचलित हैं। प्राकृत भाषा का व्याकरण संस्कृताचार्यों ने लिखा। संस्कृत साहित्यिक भाषा होने के कारण तथा ऊँचे लोगों को प्राकृत भाषा का रूप-ज्ञान होने के उद्देश्य से संस्कृत भाषा में व्याकरण लिखा। उनके मतानुसार संस्कृत भाषा से प्राकृत भाषा निर्मित हो गई। साहित्यिक भाषा से बोली भाषा का निर्माण भाषा-विज्ञान के अनुसार सिद्ध नहीं हो सकता। प्राकृत प्रेमी आचार्यों ने प्राकृत से संस्कृत भाषा के निर्माण होने का मत प्रकट किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृत आचार्यों का मत

(१) हेमचन्द्र (सिद्धहेमशब्दानुशासन)—प्रकृतिः संस्कृतम् तत्र भवं, तत आगतम् वा प्राकृतम् ।

(२) मार्कण्डेय-(प्राकृतसर्वस्व)—प्रकृतिः संस्कृतम् तत्र भवं प्राकृतमुच्यते ।

(३) लक्ष्मीधर—(षड्भाषा-चन्द्रिका)—प्रकृतेः संस्कृतयास्तु विकृतिः प्राकृती मता ।

(४) प्राकृत संजीवनी—प्राकृतस्य तु सर्वमेव संस्कृतम् योनिः ।

प्राकृत प्रेमी नमिसाधु, महाकवि सिद्धसेन दिवाकर, महाकवि वाक्पतिराज, राजशेखर ने प्राकृत भाषा के बारे में प्रभावक विचार स्पष्ट किये हैं । नमिसाधुजी का मत है—प्रकृति शब्द का अर्थ लोगों का व्याकरण आदि के संस्कार रहित स्वाभाविक वचन व्यापार, उससे उत्पन्न या वही प्राकृत है । महाकवि सिद्धसेन दिवाकर और आचार्य हेमचन्द्र जिनदेव की वाणी को अकृत्रिम मानते हैं । प्राकृत जनसाधारण की मातृभाषा होने के कारण अकृत्रिम, स्वाभाविक है । वाक्पतिराज ने 'गउडवहो' नामक महाकाव्य के ९३ श्लोक में कहा है—इसी प्राकृत भाषा में सब भाषाएँ प्रवेश करती हैं और इस प्राकृत भाषा से ही सब भाषाएँ निर्गत हुई हैं, जैसे जल आकर समुद्र में ही प्रवेश करता है और समुद्र से ही वाष्प रूप से बाहर होता है । प्राकृत भाषा की उत्पत्ति अन्य किसी भाषा से नहीं हुई है, बल्कि संस्कृत आदि सब भाषाएँ प्राकृत से ही उत्पन्न हुई हैं । प्राकृत के अनेक शब्द और प्रत्ययों का मेल संस्कृत भाषा से नहीं सिद्ध होता, अतः प्राकृत मूल भाषा मानना उचित होगा । प्राकृत भाषा में अनेक भाषाएँ समाविष्ट हैं, जैसे—पाली, पैशाची, शौरसेनी, मागधी, अर्धमागधी, महाराष्ट्री, अपभ्रंश । अर्धमागधी प्राकृत भाषा का एक भाग होगा ।

आगमग्रन्थों की भाषा अर्धमागधी है । जैन धर्म का उपदेश अर्धमागधी भाषा में किया गया है । गणधर सुधर्मास्वामी ने अर्धमागधी को साहित्यिक भाषा का रूप दे दिया । इसे आर्ष प्राकृत और देवताओं की भाषा कहा जाता है । अर्धमागधी भाषा की उत्पत्ति के बारे में मत इस तरह है—

(१) मागधी भाषा का आधा भाग जिस भाषा में है वह भाषा अर्धमागधी ।

(२) जिनदासगणिमहत्तर के अनुसार अर्धमगधदेश में बोली जाने वाली भाषा अर्धमागधी है ।

(३) मगधद्ध विसयभासा निबद्धं । पिशेल इसे आर्ष नाम देते हैं ।

(४) नमिसाधु का मत—ऋषि, देव, सिद्धों की तथा पुराणों की भाषा आर्ष भाषा है ।

(५) पश्चिम की ओर शौरसेनी और पूरब की ओर मागधी, इसके बीच बोली जाने वाली भाषा अर्धमागधी है ।

ध्वनितत्त्वानुसार देखा जाये तो अर्धमागधी पाली से अर्वाचीन लगती है लेकिन साहित्यिक रूप से देखा जाय तो पाली से अर्धमागधी प्राचीन है, यह सिद्ध होता है ।

अर्धमागधी का मूल उत्पत्ति स्थान मगध या शूरसेन (अयोध्या) का मध्यवर्ती प्रदेश माना जाता है । ग्रियर्सन ने अर्धमागधी भाषा मध्यदेश और अयोध्या की भाषा कहा है । भाण्डारकर इस भाषा का उत्पत्ति समय ई० द्वितीय शताब्दी, डॉ० चटर्जी तृतीय शताब्दी, डॉ० जेकोबी ई० पू० चतुर्थ शताब्दी का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेष भाग या ई० पू० तृतीय शताब्दी का प्रथम भाग मानते हैं। अर्धमागधी भाषा का निर्माण वैदिक-कालीन प्राकृत से हुआ है।

अर्धमागधी भाषा के लक्षण

वर्णभेद—(१) दो स्वरों के मध्यवर्ती असंयुक्त 'क' के स्थान में प्रायः सर्वत्र 'ग' और अनेक स्थलों में 'त' और 'य' होता है—जैसे—आकाश-आगास, लोक-लोग, अधिक-अधित, कुणिक-कुणित, कायिक-काइय, लोक-लोय।

(२) दो स्वरों के बीच का असंयुक्त 'ग' प्रायः कायम रहता है, इसका 'त' और 'य' होता है। जैसे—आगमन-आगमण, अतिग-अतित, सागर-सायर।

(३) अनाद्य, असंयुक्त क, ग, च, ज, त, द, प, य, व इन व्यंजनों का प्रायः लोप होता है। लुप्त व्यंजनों के दोनों तरफ 'अ' वर्ण होने पर लुप्त व्यंजन के स्थान 'य' होता है। जैसे—लोकः-लोओ, रोचित-रोइय, भोजिन्-भोइ, आतुर-आउर, आदेशि-आएसि, कायिक-काइय, आवेश-आएस आदि।

(४) शब्द के आदि, मध्य, संयोग में सर्वत्र 'ण' की तरह 'न' भी होता है। जैसे—नदी-नई, ज्ञातपुत्र-नायपुत्त, अनिल-अणिल।

(५) यथा, यावत्, शब्द के 'य' का लोप और ज दोनों ही देखे जाते हैं। जैसे—यथाजात-अहाजाय, यावज्जीव-जावज्जीव।

नाम विभक्ति—(१) अकारान्त पुलिंग शब्द के प्रथमा एक वचन में 'ए', 'ओ' प्रत्यय का प्रयोग करते हैं—देवे, देवो।

(२) सप्तमी एकवचन में 'अंसि, प्रत्यय आता है—देवंसि, कम्मंसि।

(३) चतुर्थी के एकवचन में आए प्रत्यय आता है—सवणाए, कण्हाए।

धातु रूप—(१) भूतकाल के लिए एकवचन में 'इत्था' और बहुवचन में 'इंसु' प्रत्यय आते हैं—करित्था, करिंसु।

(२) 'त्वा' प्रत्यय के अनेक रूप दिखाई देते हैं—कट्टु, चइत्ता, जाणित्तु, किच्चा, दुरूहिया, लद्धुं आदि।

(३) 'तुम्' प्रत्यय के स्थान में 'इत्तए' का प्रयोग करते हैं, जैसे—करित्तए, गच्छित्तए।

(४) तद्धित रूप बनाने के लिए 'तर' प्रत्यय का 'तराय' रूप होता है—जैसे अप्पतराए, कंततराए।

अन्य विशेषताएँ—(१) पुनरावृत्ति न हो, इसलिए अंकों का प्रयोग किया जाता है, जैसे—अन्न—४, खीरधाई—५।

(२) वैशिष्ट्यपूर्ण वाक्यप्रयोग—कालं मासे कालं किच्चा, जामेव दिसीं पाउब्भूया तामेव दिसीं पडिगया।

(३) सप्तमी विभक्ति के बदले तृतीया विभक्ति का प्रयोग किया जाता है जैसे—तेणं कालेणं तेणं समएणं।

(४) समान वर्णन हो तो कुछ शब्द, वाक्य लिखकर जाव·····ताव, वण्णओ आदि का प्रयोग कर शेष वर्णन करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बरनेट का मत यह है कि अर्धमागधी विशिष्ट शब्दों से युक्त होने से तान्त्रिक भाषा है अतः रचना क्लिष्ट लगती है। नूतनता का अभाव है। अन्य प्राकृत भाषा-प्रेमी विद्वानों का विचार है—अर्धमागधी भाषा आसान, समझने के लिए अच्छी है। नायाधम्मकहाओ, उत्तराज्झयण की भाषा सुबोध है।

'प्राकृत भाषा' यह शब्दप्रयोग अर्धमागधी तथा अन्य भाषाओं के लिए भी किया जाता है। अन्यान्य व्याकरणकारों ने किसी-न-किसी रूप में महाराष्ट्री भाषा को महत्त्व दिया है। संस्कृत भाषा का अपभ्रष्ट रूप जो भी भाषा या रूप प्राप्त होगा उसे प्राकृत माना गया है। पाली और अर्धमागधी भाषा को पहले-पहल प्राकृत माना गया। सूक्ष्मता से देखा जाय तो अर्धमागधी भाषा का रूप अलग ही है। आर्षभाषा और अर्धमागधी भाषा इन दोनों में भेद नहीं है, यह डॉ० जेकोबी ने सप्रमाण सिद्ध किया है। जैन सूत्रों की भाषा अर्धमागधी है तथा परवर्ती काल में महाराष्ट्री की विशेषताओं से युक्त होने से जैन महाराष्ट्री कही जा सकती है। पंडित बेचरदास जी ने अर्धमागधी भाषा को महाराष्ट्री सिद्ध करने की विफल चेष्टा की है। प्राकृत शब्द का मुख्य अर्थ है प्रादेशिक कथ्यभाषा लोकभाषा। जैन सूत्रों की अर्धमागधी भाषा नाट्यशास्त्र या प्राकृत व्याकरणों की अर्धमागधी से समान न होने के कारण महाराष्ट्री न कही जाकर अर्धमागधी ही कही जा सकती है।

भरत ने जिन सात भाषाओं का उल्लेख किया है, उसमें अर्धमागधी भी है। नाटकों में प्रयुक्त अर्धमागधी तथा जैन सूत्रों की अर्धमागधी में समानता की अपेक्षा भेद ही दिखाई देता है। डॉ० होर्नले ने जैन अर्धमागधी को ही आर्षप्राकृत कहकर इसी को परवर्ती काल में उत्पन्न अन्य भाषाओं का मूल माना है। हेमचन्द्र ने एक ही भाषा के प्राचीन रूप को आर्ष प्राकृत और अर्वाचीन रूप को महाराष्ट्री मानते हुए आर्ष प्राकृत को महाराष्ट्री का मूल स्वीकार किया है।

महाराष्ट्री में य श्रुति का नियम हम देखते हैं। अर्धमागधी में प्रायः उसी नियम से सम्बन्धित व्यंजनों के लिए अन्यान्य व्यंजनों का प्रयोग किया जाता है। महाराष्ट्री की तरह लोप भी दिखाई देता है। गद्य में भी अनेक स्थलों में समास के उत्तर शब्द के पहले 'म्' आगम होता है। महाराष्ट्री के पद्य में पादपूर्ति के लिए ही कहीं-कहीं 'म्' आगम देखा जाता है, गद्य में नहीं। अर्धमागधी में ऐसे बहुत से शब्द हैं, जिनका प्रयोग महाराष्ट्री में उपलब्ध नहीं होता जैसे—वक्क, विउस आदि। ऐसे शब्दों की संख्या भी बहुत बड़ी है जिनके रूप अर्धमागधी और महाराष्ट्री में भिन्न प्रकार के होते हैं; जैसे—आहरण-उआहरण, दोच्च-दुइअ, पुव्वि-पुव्वं। महाराष्ट्री में सप्तमी विभक्ति में 'म्मि', तृतीया एकवचन में 'एण' प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। महाराष्ट्री में भूतकाल का प्रयोग लुप्त हो गया है। महाराष्ट्री और अर्धमागधी में सूक्ष्म भेद भी है। अर्धमागधी भाषा की अन्य विशेषताएँ पूर्व में स्पष्ट की हैं। उन विशेषताओं से भी महाराष्ट्री से अर्धमागधी भाषा अलग है, यह सिद्ध होता है।

भाषा परिवर्तनशील है। अर्धमागधी भाषा का रूप पहले वैशिष्ट्यपूर्ण था, बाद में उसे परिवर्तित होना पड़ा। प्राकृत शब्द से सम्बन्धित जो अन्य भाषाएँ हैं उनका तथा अर्धमागधी का सम्बन्ध माता और पुत्री जैसा माना जाय तो गलत नहीं होगा। वैदिक कालीन बोली-भाषा का रूप विशेष है। उससे अर्धमागधी भाषा का निर्माण हुआ। किसी मात्रा में अर्धमागधी खास वैशिष्ट्यपूर्ण भाषा है, यह मानना पड़ेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

(१) भाषाविज्ञान—डॉ० भोलानाथ तिवारी
(२) प्राकृत साहित्य का इतिहास—डॉ० जैन
(३) पाइयसद्दमहाण्णओ—पं० शेठ

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org